वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ शुक्ल १२, बुधवार,
दिनांक-०९-०६-१९७६, गाथा-२-३-४, प्रवचन-४

परमात्मप्रकाश, पृष्ठ १०वाँ हैं। भूतकाल के अनन्त सिद्धों को पहले नमस्कार किया। पहली गाथा में। दूसरी गाथा में भविष्य में सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार करते हैं। कहते हैं, **क्या करके सिद्ध होंगे ?** भविष्य में अनन्त—श्रेणिक राजा आदि सिद्धपद को प्राप्त करेंगे। क्या करके ? **क्या करके... वीतराग सर्वज्ञदेवकर प्ररूपित मार्गकर...** यह सत्। सर्वज्ञ वीतरागदेव, का कहा हुआ **मार्गकर दुर्लभ ज्ञान को पाके...** आहाहा! आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान, आत्मज्ञान। **दुर्लभ ज्ञान को पाके...** अर्थात् आत्मज्ञान को प्राप्त करके। पर का ज्ञान नहीं, विकार का नहीं, एक समय की पर्याय का नहीं। आहाहा! आत्मज्ञान। ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान। आत्मा जो अखण्ड-अभेद, उसका ज्ञान। द्रव्य का ज्ञान। पर का नहीं, पर्याय का नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

श्रेणिक राजा आदि सर्वज्ञ वीतराग ने कहे हुए मार्ग.... आहाहा! **दुर्लभ ज्ञान को पाके...** आत्मज्ञान दुर्लभ है, जो अनन्त काल में प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे **दुर्लभ ज्ञान को पाके राजा श्रेणिक आदिक जीव...** श्रेणिक आदि जीव भविष्य में सिद्ध होनेवाले हैं न! सबको याद किया है। परमात्मप्रकाश कहूँगा, परन्तु ऐसे परमात्मा को याद करके, नमस्कार करके कहूँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

पुनः कैसे होंगे ? शिव अर्थात् निज शुद्धात्मा की भावना,... निज भगवान आत्मा शुद्धात्मा त्रिकाली वस्तु ध्रुव, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता। शुद्धात्मारूपी भाव की भावना। त्रिकाल शुद्ध स्वभाव भगवान आत्मा, ऐसा जो स्वभावभाव, उसकी भावना। आहाहा! **उसकर उपजा जो वीतराग परमानन्द सुख,...** उससे उत्पन्न वीतराग परमानन्द। संसारी के सुख तो रागवाले अज्ञान में हैं। सुख की कल्पना करके मानता है न! शास्त्र ऐसा कहे, व्यवहार से। है तो दुःख। परन्तु यह मानता है न, हम कुछ सुखी हैं। पैसे से, इज्जत से सुखी हैं। यह तो कल्पना है। वास्तव में दुःख है।

मुमुक्षु : वास्तव में दुःखी है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद बिना पुण्य-पाप के राग के स्वादिया दु:खी हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : जहाँ तक अतीन्द्रिय का स्वाद न आवे, वहाँ तक दु:खी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी है। वहाँ तक दु:खी है। आहाहा! आनन्द तो प्रभु आत्मा में है। आहा! सुखशक्ति। भगवान आत्मा वस्तु है, उसमें सुख का सामर्थ्य है। शक्ति तो उसमें है। अतीन्द्रिय आनन्द का भाव शक्ति सुख, उसे प्राप्त किये बिना प्राणी दु:खी है। और निज शुद्धात्मा भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य शुद्धस्वरूप ऐसा जो स्वभावभाव, उसकी भावना—उसकी अन्दर एकाग्रता। उससे उत्पन्न हुआ **वीतराग परमानन्द सुख,...** आहाहा! यह तो एकदम सिद्ध को वन्दन करते हैं न! सिद्ध ऐसे हैं और उन्हें स्वयं को होना है न वापस। आहाहा!

वीतराग परमानन्द सुख, उस स्वरूप होंगे... वीतराग परमानन्द सुखरूप होंगे। सिद्ध होंगे अर्थात् ऐसे होंगे, ऐसा कहते हैं। सिद्ध होंगे अर्थात् क्या? कि **वीतराग परमानन्द सुख, उस स्वरूप होंगे...** आहाहा! वीतरागी परमानन्द सुख की दशारूप होंगे। यह सिद्धपद। आहाहा! **समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे,...** आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय परम आनन्द के सुख की प्राप्ति, ऐसे जो श्रेणिक राजा भविष्य में सिद्ध होंगे, उनके सुख की उपमा क्या कहना? कहते हैं। दुनिया के चार गति के प्राणी तो दु:खी हैं, तो उनकी उपमा उन्हें (सिद्ध को) क्या हो? उनकी उपमा उन्हें। है? **समस्त उपमा रहित...** सब उपमारहित प्रभु का आनन्द है। आहाहा! **समस्त उपमा रहित अनुपम होंगे,...** अनुपम होंगे। जिसे उपमा नहीं, ऐसे सिद्ध होंगे। आहाहा!

अभूतपूर्व आया था न? पंचास्तिकाय में। भूतकाल में यह पर्याय उत्पन्न हुई नहीं, ऐसी दशा होगी। आहाहा! सिद्ध। वस्तु तो है। वस्तु तो परम आनन्दमय ही है। वीतराग परम आनन्दमय, परम आनन्दस्वरूप ही है। उसकी भावना से, एकाग्रता से परम आनन्दस्वरूप पर्याय में होंगे कि जिसकी परमानन्ददशा उपमारहित है। आहाहा! समझ में आया?

और केवलज्ञानमयी होंगे। सुख और ज्ञान दो की मुख्यता की। अकेली ज्ञानदशा,

पर्याय में केवलज्ञान अकेली पर्याय पूर्ण। वस्तु तो ज्ञान पूर्ण है। ऐसा पूर्ण ज्ञान का स्वरूप ही शुद्ध आत्मा है। उसकी भावना से, परम आनन्द की भावना से, वह परम केवलज्ञान को प्राप्त होंगे। देखो! श्रेणिक राजा होंगे, उन्हें पहला नमस्कार करते हैं। अभी तो नरक में हैं। परन्तु उन्हें स्मरण करते हैं कि ओहोहो! ऐसी दशा आपको प्राप्त होगी। इस प्रकार मैं भविष्य में सिद्ध प्राप्त होंगे, उन्हें मेरा नमस्कार। भूतकाल में अनन्त सिद्ध हो गये, उन्हें मैंने स्मरण करके भावनमस्कार किया। पहले विकल्प से द्रव्यनमस्कार (किया)। भविष्य में यह होंगे। ओहोहो! यहाँ तो सिद्ध की टोली इकट्ठी हुई, उसकी बातें हैं। आहाहा! सिद्ध का गाँव बसता है वहाँ। सब सिद्ध वहाँ बसते हैं। आहाहा! अनन्त काल में हो गये, भविष्य में राजा श्रेणिक राजा आदि होंगे।

क्या करते हुए ऐसे होंगे ? क्या करके होंगे ? पहली शुद्धात्मभावना। यह साधारण बात की थी, अब स्पष्ट खुलासा—स्पष्टीकरण करते हैं। गजब टीका है! यह भावना ग्रन्थ है न! भावना का ग्रन्थ है। समाधिशतक भाव... आहाहा! **क्या करते हुए ऐसे होंगे ?** श्रेणिक राजा आदि भविष्य में परमात्मा सिद्ध होंगे, वे क्या करके होंगे ? पहली बात तो की थी कि शुद्धात्मा की भावना (करके होंगे)। परन्तु वह भावना क्या चीज ? आहाहा!

निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,... आहाहा! कैसा है भगवान आत्मा ? **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव...** उसका तो ज्ञान—ज्ञाता और दृष्टा। निर्मल ज्ञान और निर्मल दर्शन, ऐसा जिसका निज स्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा। आहाहा! यह पर्याय की बात नहीं। **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,...** आहाहा! शाश्वत् वस्तु जो ध्रुव अनादि-अनन्त निर्मल ज्ञान-दर्शनमय जो शुद्धात्मा... आहाहा! **निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा है,...** ऐसा कहा न ? आहाहा! कोई पूछता था, वह लड़का सुने तो कहे, आत्मा क्या है ? पूरे दिन बात तो यह चलती है। आहाहा! आत्मा अर्थात् निर्मल ज्ञान-दर्शनमय वह आत्मा। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्मल ज्ञान-दर्शन का अर्थ करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल अर्थात् पवित्र-शुद्ध। आगे कहेंगे। अमोलिकी, ऐसा कहेंगे रत्नत्रय को। जिसकी कीमत / मोल नहीं, ऐसे रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

आहाहा! यहाँ ही होगी। इसमें ही लिखा है। बहुत सरस बात है। आहाहा!

निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव... निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा शुद्धात्मा। स्वभाववान शुद्धात्मा, ऐसा स्वभाव। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वभाव ही निर्मल ज्ञान-दर्शन।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव निर्मल है। आहाहा!

उसकी यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अमोलिक रत्नत्रयकर... आहाहा! ऐसा जो भगवान निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव ऐसा शुद्धात्मा, जिसका यथार्थ श्रद्धान। आहाहा! श्रद्धा ने पूरे निर्मल आनन्द के नाथ की प्रतीति ली। आहाहा! प्रतीति में पूर्णानन्द के नाथ को पाचन करने की शक्ति है। अग्नि में जैसे अनाज पकाने की शक्ति है; उसी प्रकार भगवान आत्मा में—सम्यग्दर्शन में पूर्णानन्द को पाचन करने की अर्थात् पूर्णानन्द को स्वीकार करने की, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसके ध्येय में आया, उसे मानने की उसकी शक्ति है। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में पूर्ण आनन्दस्वरूप है, उसकी प्रतीति करने की, पाचन करने की शक्ति है। भले एक समय की पर्याय हो। है सम्यग्दर्शन एक समय की पर्याय, परन्तु उसे पाचन में तो पूर्णानन्द का नाथ पाचन करने की उसकी शक्ति है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी धर्म की बात! इसमें एकेन्द्रिय की, दो इन्द्रिय की दया पालना और...! ऐई! जादवजीभाई! आहाहा! बापू! तुझे तेरी दया है या नहीं? दया का अर्थ—जितना निजस्वभाव निर्मल आनन्द पूर्ण है, उसे वैसा जीवता स्वीकार करना, इसका नाम दया है। इसका नाम अहिंसा है; और ऐसे पूर्णानन्द के नाथ को राग और पुण्य-पापवाला स्वीकार करना और पुण्य-पाप है, ऐसे स्वीकार में अनन्त ज्ञान का अनादर होता है। इसका नाम हिंसा है। आहाहा! निर्मल ज्ञान-दर्शनमय शुद्धात्मा का स्वीकार नहीं और पुण्य और पाप के विकल्प विभाव कृत्रिम उपाधि दुःख, उसका स्वीकार, उसका जीवन, वह मेरा और यह जीवन वह नहीं, यह उसकी हिंसा की। हिंसा का अर्थ (यह कि) है, उसका नकार किया। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें मारकूट तो कुछ होती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मारकूट हो गयी न। चोट पड़ी न! निरोगी शरीर पर जैसे छुरे की चोट पड़ती है, उसी प्रकार पुण्य-पाप मेरे, यह चैतन्य के स्वभाव में चोट पड़ती है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार की बातें हैं। ऐसे योग तो तीर्थंकर के अनन्त बार मिले। समवसरण अनन्त बार मिला। आहाहा! परमात्मप्रकाश में आगे आयेगा— भव-भव में जिनवर के समवसरण में जिनवर की पूजायें कीं। परन्तु वह तो परद्रव्य की पूजा, वह तो विकल्प है। आहाहा! लोगों को बाहर से पर से कुछ हो तो उसे ठीक पड़ता है। पर से क्या होगा? प्रभु! पर का आश्रय करने जाये तो राग ही होगा। चाहे तो तीन लोक के नाथ और उनकी वाणी सुनने का समय होगा, वहाँ शुभराग ही होगा। आहाहा!

समयसार के कर्ता-कर्म अधिकार की ७४ गाथा में तो ऐसा कहा है कि शुभभाव है, वह वर्तमान दुःखरूप है। भगवान आनन्द के स्वभाव से विपरीत भाव है, दुःख है और भविष्य में दुःख का कारण है। आहाहा! यह शुभभाव से पुण्य बँधेगा और पुण्य के कारण कदाचित् वीतराग और वीतराग की वाणी मिलेगी। परन्तु वह परद्रव्य है; इसलिए उनके ऊपर तेरा लक्ष्य जायेगा तो (तुझे) राग ही होगा।

मुमुक्षु : कोई अपेक्षा कही होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही अपेक्षा। (दूसरी) कौन सी ओर? पराश्रित व्यवहार, स्वआश्रित निश्चय। यह वाणी और भगवान मिलना, उसके ऊपर लक्ष्य जाएगा तो राग ही होगा। दुःख होगा।

मुमुक्षु : आये बिना रहता नहीं, आप ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग बात है। आवे तो भी दृष्टि में वह नहीं। दृष्टि के विषय में और दृष्टि में वह आदर में नहीं। आहाहा! पूर्ण न हो, तब होता तो अवश्य है, परन्तु हेयबुद्धि से है। आहाहा! यह तो निर्विकल्पस्वभाव वीतरागमार्ग है, भाई! आहाहा! ऐसी बात पूर्ण है, वह शुद्ध है, यह सुनना भी महामुश्किल है। उसमें ऐसा नहीं कहा?

अध्यात्म बात सुननेवाले ऊँचे हैं, और जिन्हें ऐसी अध्यात्म की बात यथार्थरूप से—रुचिरूप से सुनी। भावी निर्वाण भाजनम्। कहा है न? समयसार में सामने रखा है। पद्मनन्दि पंचविंशति। आहाहा! तीन लोक का नाथ शुद्ध चैतन्यघन, जिसने सुना। सुना उसे कहते हैं कि जिसे अन्दर रुचि हुई। आहाहा! रुचि से सुना।

मुमुक्षु : सुनने का अर्थ रुचि?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला सुना है तो अनन्त बार सुना है। आहाहा! इसकी रुचि में पूर्ण आनन्द जिसे पोषण में आया, पोसाता है; जैसे व्यापारी को माल पोसाता है न? कि ढाई रुपये में वहाँ से मिलता है और यहाँ तीन रुपये उपजेंगे, तो लेता है। तिल या गेहूँ आदि। इसी प्रकार समकिती को यह आत्मा पोसाता है। आहाहा! समझ में आया? अरे! भाई! संसार के दुःख से मुक्त होना और परमानन्द की प्राप्ति (करना), उसका उपाय कोई अलौकिक होता है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो!

ऐसा जो भगवान निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव जो शुद्धात्मा, उसकी यथार्थ श्रद्धा। भगवान परमात्मा की श्रद्धा, ऐसा नहीं। इसकी श्रद्धा—निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावमय शुद्धात्म वस्तु, मौजूदगी, उसकी मौजूदगी की प्रतीति। आहाहा! उसके सन्मुख होकर, उसके सन्मुख होकर निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर। आहाहा! संयोग, राग की पर्याय से विमुख होकर। त्रिकाली भगवान सत्य प्रभु उसके सन्मुख होकर। आहाहा! है आगे, सत् कहेंगे। आहाहा! उसका श्रद्धान, उसका ज्ञान। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावरूप शुद्धात्मा, उसका ज्ञान, उसकी प्रतीति और उसका ज्ञान, आहाहा! और उसका आचरण। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभावरूप शुद्धात्मा वस्तु, उसका आचरण। वस्तु के स्वभाव का आचरण। यह विकल्प दया, दान और व्रत और यह आचरण तो बन्ध के कारण हैं। आहाहा! बहुत कठिन। वर्तमान में... आहाहा!

अमोलिक रत्नत्रयकर... जिसका मूल्य नहीं। रत्नत्रय। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो रत्नत्रय, अमोलिक—जिसकी कीमत नहीं। आहाहा! जो मोल से मिले, ऐसा नहीं। अमोलिक है। आहाहा! समझ में आया? यह पर्याय की बात है। निर्मल ज्ञान-दर्शनस्वभाव, ऐसा शुद्धात्मा, यह वस्तु कही और इस वस्तु की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण अमोलिक रत्नत्रय, वह पर्याय है। आहाहा! यह तो अकेला मक्खन है,

भाई! आहाहा! परमात्मप्रकाश अर्थात् अकेला भगवान... भगवान... भगवान... आहाहा!

अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण... आहाहा! किसमें आया? उस ओर है। '**अनुचरण-रूपामूल्यरत्नत्रय**' संस्कृत में अमूल्य शब्द है। अमुलक-अमूल्य। आहाहा! विशुद्ध ज्ञान-दर्शनस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व, उसका सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप अमूल्य रत्नत्रय। आहाहा! **अमोलिक रत्नत्रयकर पूर्ण और मिथ्यात्व...** भर लिया है न। भर शब्द है वहाँ। अर्थात् पूर्ण। पूर्ण निर्मल स्वभाव, ऐसा शुद्धात्म भगवान मौजूद वस्तु है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और आचरण अमोलिक रत्नत्रय से पूर्ण। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से पर्याय में पूर्ण। वस्तु से पूर्ण है और पर्याय में पूर्ण हुआ। आहाहा!

और मिथ्यात्व विषय कषायादिरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित... यह संसार खारा है, ऐसा बतायेंगे। मिथ्यात्व—भ्रान्ति, विषय-कषायादि विभावरूप जाल, उसके प्रवेशरहित है, ऐसे अमोलिक ज्ञान-दर्शन-चारित्र के रत्नत्रय से पूर्ण है और **मिथ्यात्व विषय कषायादिरूप समस्त विभावरूप जल के प्रवेश से रहित...** है। आहाहा! ऐसी **शुद्धात्म की भावना से उत्पन्न हुआ...** ऐसा शुद्धात्मरूप भगवान त्रिकाल, उसकी भावना वह त्रय—रत्नत्रय। ऐसी भावना से उत्पन्न हुआ। आहाहा! **जो सहजानन्दरूप सुखामृत,...** स्वाभाविक आनन्दरूप सुखामृत। आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं! स्वाभाविक आनन्द जो स्वरूप में था, वह पर्याय में सहजानन्दरूप सुखामृत, सुखरूपी अमृत, **उससे विपरीत जो नारकादि दुःख...** आहाहा! चारों ही गति के दुःख हैं। स्वर्ग, वह दुःखरूप है। **नारकादि दुःख, वे ही हुए क्षार जल,...** आहाहा!

उनकर पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र... इस ओर लिया था—रत्नत्रय पूर्ण। आहाहा! इस ओर पूर्ण वस्तु; पर्याय में रत्नत्रय पूर्ण; इस ओर क्षारसमुद्र पूर्ण। आहाहा! **वे ही हुए क्षार जल,...** आहाहा! चार गति के दुःखरूपी खारा जल। **उनकर पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय...** आहाहा! **जो परमसमाधिरूप जहाज...** परमसमाधिरूपी जहाज। ऐसा जो क्षारसमुद्र से पूर्ण ऐसा संसार। आहाहा! दुःखरूप है। उसे तिरने का उपाय **परमसमाधिरूप जहाज उसको सेवते हुए,...** आहाहा! परमसमाधि को सेवन करते हुए सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। दुःख को पाते हुए, चारित्र दुःख है, यह है, (ऐसा

अज्ञानी कहते हैं)। वह तो परम आनन्द के सुख को प्राप्त होते हुए सिद्धपद को प्राप्त करते हैं। समझ में आया? ऐसा कि यह साधु चारित्र में दुःख और क्लेश (भोगते) हैं। उसकी व्याख्या की खबर नहीं।

मुमुक्षु : लोहा चबाने के बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें खोटी हैं। दूध के दाँत से लोहे के चने चबाना, बापू! ऐसा चारित्र... उसे दुःखदायी होगा? भाई! तुझे खबर नहीं। चारित्र तो अनन्त आनन्द के रस में उत्पन्न हो, वह चारित्र है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में दशा स्थिर हो, उसका नाम चारित्र। आहाहा! अरे! यह लोग कहाँ का कहाँ बेचारे कसकर मार डालते हैं। आहाहा!

पूर्ण इस संसाररूपी समुद्र के तरने का उपाय... क्षाररस से पूर्ण, उसे तिरने का उपाय पूर्णानन्द के नाथ की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र से पूर्ण रत्नत्रय... आहाहा! **उसके आधार से चलते हुए,...** परमानन्द के आधार से अन्दर रमते हैं। अभी बुखार मिटा नहीं भाई को? निर्बलता है। आहाहा! अमृत बहाया है। मोक्ष को अमृत कहा है न? मोक्ष को अमृत कहा है। आहाहा!

कहते हैं कि **परमसमाधिरूप जहाज...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह परम आनन्दरूपी जहाज है। आहाहा! परम आनन्दरूपी जहाज से ऐसा जो क्षार संसार चार गति के दुःख, उससे पार पाया जाता है। मुक्ति कही जाती है। मुक्ति अर्थात् दुःख से मुक्ति। नास्ति से कथन है न। अर्थात् मुक्ति किसकी? दुःख से। प्राप्ति किसकी? कि आनन्द की। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अनन्त सिद्ध होंगे।** श्रेणिक राजा आदि जीव भविष्य में पूर्णानन्द के नाथ की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण रत्नत्रय (प्राप्त कर-प्रगटाकर), उससे क्षारसमुद्र का अन्त लायेंगे और परम आनन्द को प्राप्त करेंगे। ऐसे सिद्ध को मैं नमस्कार करता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस व्याख्यान का यह भावार्थ हुआ कि, जो शिवमय अनुपम ज्ञानमय शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है। वह आदरणीय है। यह इसका सार है। शिवमय अर्थात् निरुपद्रव आनन्दमय, अनुपम—जिसकी उपमा नहीं। आया न ऊपर? ज्ञानमय

शुद्धात्मस्वरूप। अकेला ज्ञानमय, ज्ञानमय। ज्ञानवाला भी नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मस्वरूप है, वही उपादेय है।** त्रिकाली आनन्द का नाथ, वह आदरणीय है। आहाहा! निमित्त नहीं, व्यवहार नहीं, एक (समय की) पर्याय भी नहीं। पर्याय में त्रिकाली आदरणीय है। समझ में आया? आहाहा!

शिवमय अनुपम... आहाहा! ऊपर कहा था न? शिव नहीं कहा था? निज **शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो सहजानन्दरूप सुखामृत,...** पहले कहा था। तीसरी लाईन। शिव-शिव। शिव कहा था। अनुपम कहा था। दो—शिव, अनुपम, ज्ञानमयी। ऐसा जो शुद्धात्मस्वभाव, शुद्धात्मभाव, वह आदरणीय है। वह अन्दर में सत्कार करनेयोग्य है। उसका स्वीकार करनेयोग्य है। वह आदरणीय एक ही यह चीज़ है। व्यवहार और भगवान भी आदरणीय नहीं। आहाहा!

दो गाथा हुई। दो में यह कहा। पहले में यह कहा। अनन्त सिद्ध हुए। किस प्रकार से हुए, यह बात करके (नमस्कार किया)। भविष्य में होंगे। किस प्रकार, यह बात की। आहाहा!

गाथा - ३

अथानन्तरं परमसमाध्यग्निना कर्मेन्धनहोमं कुर्वाणान् वर्तमानान् सिद्धानहं नमस्करोमि–

३) ते हउँ वंदउँ सिद्ध–गण अच्छहिं जे वि हवंत।
परम–समाहि–महग्गिएँ कम्मिंधणइँ हुणंत।।३।।

तान् अहं वन्दे सिद्धगणान् तिष्ठन्ति येऽपि भवन्तः।
परमसमाधिमहाग्निना कर्मेन्धनानि जुह्वन्तः।।३।।

ते हउं वंदउं सिद्धगण तानहं सिद्धगणान् वन्दे। ये कथंभूताः। अत्थ(च्छ) हिं जे वि हवंत इदानीं तिष्ठन्ति ये भवन्तः सन्तः। किं कुर्वाणास्तिष्ठन्ति। परमसमाहिमहग्गिएँइँ कम्मिंधणइँ हुणंत परमसमाध्यग्निना कर्मेन्धनानि होमयन्तः। अतो विशेषः। तद्यथा–तान् सिद्धसमूहानहं वन्दे वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानलक्षणपारमार्थिकसिद्धभक्त्या नमस्करोमि। ये किंविशिष्टः। इदानीं पञ्चमहाविदेहेषु भवन्तस्तिष्ठन्ति श्रीसीमन्धरस्वामिप्रभृतयः। किं कुर्वन्तस्तिष्ठन्ति। वीतरागपरमसामायिकभावनाविनाभूतनिर्दोषपरमात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेद–रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिवैश्वानरे कर्मेन्धनाहुतिभिः कृत्वा होमं कुर्वन्त इति। अत्र शुद्धात्म–द्रव्यस्योपादेयभूतस्य प्राप्त्युपायभूतत्वान्निर्विकल्पसमाधिरेवोपादेय इति भावार्थः।।३।।

आगे परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप इंधन का होम करते हुए वर्तमानकाल में महाविदेहक्षेत्र में सीमंधरस्वामी आदि तिष्ठते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ –

उत्कट समाधि महानल से कर्म ईंधन को जला।
जो हो रहे हैं सिद्धगण उन सभी को वन्दन सदा।।३।।

अन्वयार्थ :– [अहं] मैं [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्ध समूहों को [वन्दे] नमस्कार करता हूँ [येऽपि] जो [भवन्तः तिष्ठन्ति] वर्तमान समय में विराज रहे हैं, क्या करते हुए? [परमसमाधिमहाग्निना] परमसमाधिरूप महा अग्निकर [कर्मेन्धनानि] कर्मरूप ईंधन को [जुह्वन्तः] भस्म करते हुए।

भावार्थ :– उन सिद्धोंको मैं वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं वे ? अब वर्तमान समयमें पंच महाविदेहक्षेत्रोंमें

श्रीसीमंधरस्वामी आदि विराजमान हैं। क्या करते हुए ? वीतराग परमसामायिकचारित्रकी भावनाकर संयुक्त जो निर्दोष परमात्माका यथार्थ श्रद्धान–ज्ञान–आचरणरूप अभेद रत्नत्रय उस मई निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्निमें कर्मरूप ईंधनको होम करते हुए तिष्ठ रहे हैं। इस कथनमें शुद्धात्मद्रव्यकी प्राप्तिका उपायभूत निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरने योग्य) है, यह भावार्थ हुआ।।३।।

गाथा - ३ पर प्रवचन

तीसरी गाथा। **आगे परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम करते हुए वर्तमान काल में...** सीमन्धर भगवान आदि। आहाहा! परमसमाधि। केवलज्ञानी है न वे तो? परमसमाधि—परमसमाधि। वीतरागभावरूपी परमशान्ति, परम आनन्द, वह अग्नि। **परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम...** समय-समय में चार घातिकर्म है, उनका नाश होता है। आहाहा! **होम करते हुए...** लो! **परमसमाधिरूप अग्नि से कर्मरूप ईंधन का होम करते हुए...** आहाहा! **वर्तमान काल में महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी आदि तिष्ठते हैं,...** बीस तीर्थंकर विराजते हैं। आहाहा! वर्तमान काल में परम आनन्दरूपी अग्नि, समाधिरूपी अग्नि से कर्मरूपी ईंधन को होम-जलाते हुए विराजते हैं। आहाहा! **महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धरस्वामी आदि तिष्ठते हैं, उनको नमस्कार करता हूँ।** तीसरी (गाथा)।

३) ते हउँ वंदउँ सिद्ध–गण अच्छहिं जे वि हवंत।
परम–समाहि–महग्गिएँ कम्मिंधणइँ हुणंत।।३।।

अन्वयार्थ :- मैं... योगीन्द्रदेव कहते हैं कि मैं, **उन सिद्ध समूहों को नमस्कार करता हूँ...** वे सिद्धसमूह ही है न! आहाहा! **जो वर्तमान समय में विराज रहे हैं,... 'भवन्तः तिष्ठन्ति'** है न? **वर्तमान समय में विराज रहे हैं,...** आहाहा! **क्या करते हुए? परमसमाधिरूप महा अग्निकर कर्मरूप ईंधन को भस्म करते हुए। सब पदार्थों...** लो! है न? **अब विशेष व्याख्यान करते हैं।** यह तो गाथा का शब्दार्थ किया।

भावार्थ :- उन सिद्धों को मैं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ

सिद्धभक्तिकर नमस्कार करता हूँ। भाषा देखो! ऐसे सिद्ध जो वर्तमान तीर्थंकर परमात्मा विराजते हैं। वे सिद्ध ही हैं न? **मैं वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप परमार्थ सिद्ध भक्तिकर....** यह सिद्धभक्ति। सिद्धभक्ति आती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। वह तो यह। **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञान...** राग बिना का अभेद, स्व-अपना वेदन। ज्ञानस्वरूप आनन्द का वेदन, ऐसी परमार्थ सिद्धभक्ति। यह नमस्कार। आहाहा!

उन सिद्धों को मैं.... वीतराग निर्विकल्प अभेद स्वसंवेदनज्ञानरूप परमार्थ सिद्ध भक्तिकर नमस्कार करता हूँ। लो! यह भावनमस्कार। आहाहा! **कैसे हैं वे? अब वर्तमान समय में पंच महाविदेहक्षेत्रों में श्री सीमन्धरस्वामी आदि विराजते हैं।** भगवान विराजमान है। आहाहा! कितने अस्तित्व की...! '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' आता है न? सर्व सिद्धों का अस्तित्व स्वीकार करके और इनका आदर करता हूँ। है यह। अनन्त सिद्ध हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारा भला करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : भला कौन करता था? यह तो उसमें आया है। हे परमात्मा! आप पूर्ण सिद्ध हो। प्रतिध्वनि आती है कि हे परमात्मा! तू पूर्ण है। 'प्रतिच्छन्द' आता है न? पहली गाथा (समयसार) '**वंदित्तु सव्व सिद्धे।**' प्रतिच्छन्द के सथान पर है। आहाहा! जैसा यह शब्द उठाता है कि हे नाथ! प्रभु! आप पूर्ण हो। प्रतिध्वनि सामने ध्वनि आती है, हे नाथ! तू पूर्ण हो। प्रतिध्वनि नहीं कहते? राणपुर में है न। गाँव में कुछ हो तो सामने गढ़ है। पाँच सौ वर्ष प्राचीन। पाँच सौ वर्ष का पत्थर का प्राचीन विशाल गढ़ है। यहाँ से बन्दूक बजी हो तो वहाँ से आती हो ऐसा लगे। धड़ाका वहाँ जाकर वापस आवे। इसी प्रकार पडघो—प्रतिघात। आवाज का प्रति—वापस मुड़ना। आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ प्रभु आप हो। उसकी प्रतिध्वनि आवाज वापस ऐसी आती है कि पूर्णानन्द के नाथ आप हो। आहाहा! ऐसी बात है, भाई अध्यात्म की!

मुमुक्षु : हिन्दी में झांईं कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न पडघो। प्रतिघात। यहाँ यह है प्रतिघात। बिम्ब का

प्रतिबिम्ब। सामने बिम्ब हो, काँच में प्रतिबिम्ब पड़ता है न? इसी प्रकार घा का प्रतिघात। आवाज का प्रतिघात। गुलांट खाती है। आहाहा! ऐसी बात है।

क्या करते हुए? भगवान क्या करते हुए विराजमान वर्तमान सिद्ध समूह तीर्थंकर (हुए)? **वीतराग परमसामायिकचारित्र की भावनाकर संयुक्त...** आहाहा! वीतराग परमसामायिक चारित्र। देखो! उसकी भावना से, एकाग्रता से **संयुक्त जो निर्दोष परमात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप...** आहाहा! दूसरी लाईन, दूसरी लाईन में शब्द प्रयोग करते हैं। **अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्नि...** आहाहा! है? **परमात्मा का यथार्थ... निर्दोष परमात्मा का यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय उसमयी निर्विकल्पसमाधिरूपी अग्नि में कर्मरूप ईंधन को होम करते हुए...** वर्तमान परमात्मा विराजते हैं। समय-समय में आनन्द की अग्नि ज्वाला में कर्मरूपी लकड़ी (ईंधन) का होम करते हैं। स्वाहा। यह स्वाहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : तब प्रकाशमय परमात्मा होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक अरिहन्त परमात्मा होते हैं और एक सिद्ध परमात्मा होते हैं। ऐसा। यहाँ तो वे पर्याय में निर्दोष हुए। वस्तु दो प्रकार की है। एक कारणपरमात्मा, एक कार्यपरमात्मा। कारणपरमात्मा, वह वस्तु से निर्दोष है। कार्यपरमात्मा, वह पर्याय में निर्दोष है। आहाहा! **तिष्ठ रहे हैं।**

इस कथन में शुद्धात्मद्रव्य की प्राप्ति का उपायभूत... है? इस कथन से शुद्धात्मद्रव्य वस्तु की प्राप्ति का उपाय। **उपायभूत निर्विकल्प समाधि उपादेय (आदरनेयोग्य) है,...** लो! उसमें आत्मा कहा था। दूसरे में। इसमें निर्विकल्प समाधि। वीतरागी समाधि प्रगट करनेयोग्य है। वह आदरनेयोग्य है। व्यवहार विकल्प है, वह आदरनेयोग्य है, ऐसा इसमें नहीं कहा। आदरनेयोग्य नहीं है। राग, वह तो विकार-दु:ख है। आहाहा! **यह भावार्थ हुआ।** यह तीसरी गाथा हुई।

गाथा - ४

अथ पूर्वकाले शुद्धात्मस्वरूपं प्राप्य स्वसंवेदनज्ञानबलेन कर्मक्षयं कृत्वा ये सिद्धा भूत्वा निर्वाणे वसन्ति तानहं वन्दे –

४) ते पुणु वंदउँ सिद्ध–गण जे णिव्वाणि वसंति।
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव–सायरि ण पडंति।।४।।

तान् पुनः वन्दे सिद्धगणान् ये निर्वाणे वसन्ति।
ज्ञानेन त्रिभुवने गुरूका अपि भवसागरे न पतन्ति।।४।।

ते पुणु वंदउं सिद्धगण तान् पुनर्वन्दे सिद्धगणान्। किंविशिष्टान्। जे णिव्वाणि वसंति ये निर्वाणे मोक्षपदे वसन्ति तिष्ठन्ति। पुनरपि कथंभूता ये। णाणिं तिहुयणि गरुया वि भवसायरि ण पडंति ज्ञानेन त्रिभुवनगुरुका अपि भवसागरे न पतन्ति। अत ऊर्ध्वं विशेषः। तथाहितान् पुनर्वन्देऽहं सिद्धगणान् ये तीर्थंकरपरमदेवभरताधवपाण्डवादयः पूर्वकाले वीतरागनिर्विकल्प–स्वसंवेदनज्ञानबलेन स्वशुद्धात्मस्वरूपं प्राप्य कर्मक्षयं कृत्वेदानीं निर्वाणे तिष्ठन्ति सदापि न संशयः। तानपि कथंभूतान्। लोकालोकप्रकाशकेवलज्ञानस्वसंवेदनत्रिभुवनगुरून्। त्रैलोक्यालोकन–परमात्मस्वरूपनिश्चयव्यवहारपदपदार्थव्यवहारनयकेवलज्ञानप्रकाशेन समाहितस्वस्वरूपभूते निर्वाणपदे तिष्ठन्ति यतः ततस्तन्निर्वाणपदमुपादेयमिति तात्पर्यार्थः।।४।।

आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मस्वरूप को पाके सम्यग्ज्ञान के बल से कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं, उनको मैं वन्दता हूँ –

जो ज्ञान से त्रिभुवन गुरु होते हुए भी न गिरें।
भव–जलधि में निर्वाणवासी सिद्धगण को नमन है।।४।।

अन्वयार्थ :– [पुनः] फिर [‘अहं’] मैं [तान्] उन [सिद्धगणान्] सिद्धों को [वन्दे] बन्दता हूँ, [ये] जो [निर्वाणे] मोक्ष में [वसन्ति] तिष्ठ रहे हैं। कैसे हैं, वे [ज्ञानेन] ज्ञान से [त्रिभुवने गुरु का अपि] तीन लोक में गुरु हैं, तो भी [भवसागरे] संसार–समुद्र में [नपतन्ति] नहिं पडते हैं।

भावार्थ :– जो भारी होता है, वह गुरुतर होता है, और जल में डूब जाता है, वे भगवान त्रैलोक्य में गुरु हैं, परंतु भव–सागर में नहीं पड़ते हैं। उन सिद्धों को मैं वंदता

हूँ, जो तीर्थंकरपरमदेव, तथा भरत, सगर, राघव, पांडवादिक पूर्वकाल में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से निजशुद्धात्मस्वरूप पाके, कर्मों का क्षयकर, परमसमाधानरूप निर्वाणपद में विराज रहे हैं, उनको मेरा नमस्कार होवे यह सारांश हुआ।।४।।

गाथा – ४ पर प्रवचन

आगे जो महामुनि होकर शुद्धात्मास्वरूप को पाके... पहले तो सिद्ध हो गये, होंगे, वर्तमान है, उनकी बात की। अब महामुनि होकर सिद्ध होंगे। आहाहा! फिर अभी आचार्य, उपाध्याय की गाथा अन्तिम आयेगी। यह तो पहली समुच्चय बात है। महामुनि आनन्दरूपी आनन्द में रमणता करते हुए। आहाहा! **शुद्धात्मास्वरूप को पाके...** महामुनि आनन्दमय होकर शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त करके। जिन्होंने शुद्धात्मस्वरूप को दशा में प्राप्त किया है, उन्हें मुनि कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान के बल से... आहाहा! आत्मा के स्वसंवेदन ज्ञान के बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए...** कर्मों का नाश करके। देखा! शुद्धात्मस्वरूप को पाकर **सम्यग्ज्ञान के बल से...** अन्तर ज्ञान के बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए...** कोई व्यवहार करते-करते सिद्ध हुए हैं, ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद अभी का। आहाहा! व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, यह तुम्हारे रतनचन्दजी कहते हैं। दो मोक्षमार्ग हैं। दो न माने, वह भ्रम में हैं। (पंडित) टोडरमलजी कहते हैं कि दो मोक्षमार्ग माने, वे भ्रम में हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी कहता है न? कैसा विचार? कैसा तुम्हारा? विवेकसागर। है? विकासचन्दजी। ऐसा कहता है न कि टोडरमलजी भूले हैं। चौथे गुणसथान में निश्चय सम्यग्दर्शन वीतराग हो, यह मानकर भूले हैं। श्रीमद् भूले हैं, तुम (गुरुदेव कानजीस्वामी) भूले हैं। ऐसा पत्र आया है। विकासचन्दजी एक ब्रह्मचारी है। यहाँ चेतनजी का (मित्र) दोस्ताना था, पहले। छोटे गाँव में कहीं रहते हैं।

मुमुक्षु : रतनचन्दजी...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वे रतनचन्दजी।

चौथे गुणस्थान में निश्चयसम्यग्दर्शन वीतरागी हो, (ऐसा माननेवाले) भूले हुए हैं। चौथे गुणस्थान में सराग समकित ही होता है। जयसेनाचार्य ऐसा कहते हैं, ऐसा कहकर (आधार देता है)। समकित रागसहित, वह तो चारित्र के दोषसहित की बात की। समकित तो वीतरागी समकित है। पूर्णानन्द के नाथ की अन्तर अनुभव में प्रतीति, वह तो वीतरागी पर्याय है। चौथे गुणस्थान में वीतरागी पर्याय का समकित है। आहाहा! बहुत पत्र आते हैं। महीने, दो महीने में पत्र आते हैं, शिक्षा देने के लिये। उसे जँचा नहीं न!

मुमुक्षु : कहे, वह अलग विषय और शिक्षा दे, वह अलग विषय।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ऐसा कि तुम भूल में (हो और) इन सब लोगों को भूल में डालते हो। चौथे गुणस्थान में तो सराग समकित ही होता है। (वह ऐसा कहता है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, महामुनि होकर... आहाहा! तीन कषाय का अभाव होकर जिसने महामुनि शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त किया है। आहाहा! आनन्द के नाथ को जिसने पर्याय में हथेली में जैसे रखे, वैसे प्राप्त किया है। आहाहा! उसे मुनि कहते हैं। **महामुनि होकर शुद्धात्मास्वरूप को पाके...** विद्यानन्दजी कुछ कहते हैं। रात्रि में बोलते हैं। रात्रि में बात भी करते हैं। ३५ प्रकार के साधु हैं, उसमें का मैं साधु हुआ। ऐसा ... कुछ। आहाहा! अरे रे! भाई! अभी तो व्यवहार की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। परन्तु लोग मिलते हैं न पागल सब... बड़ी सभा होती है, प्रसन्न-प्रसन्न कर दे।

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि उसे कहते हैं, जिसे शुद्धस्वरूप अनुभव में प्राप्त हुआ है। जिसकी पर्याय में शुद्धात्मा प्राप्त हुआ है। द्रव्य में तो है। आहाहा! वीतरागी तीन कषाय के अभाव की पर्याय में शुद्धात्मा प्राप्त किया है, पवित्र आनन्द के नाथ को प्राप्त किया है। आहाहा! और उसके सम्यग्ज्ञान के बल से। वह सम्यग्ज्ञान प्राप्त हुआ, उसके बल से **कर्मों का क्षयकर सिद्ध हुए निर्वाण में बस रहे हैं,...** ऐसे महामुनि भी निर्वाण में अभी बसते हैं। **उनको मैं वन्दता हूँ।** आहाहा! क्या सिद्ध की भक्ति का प्रेम उछला है न! छह गाथा तक यह लेंगे। सातवीं के बाद आचार्य, उपाध्याय, साधु, लेंगे। फिर

आठवें में प्रभाकरभट्ट प्रश्न करेगा।

४) ते पुणु वंदउँ सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति।
णाणिं तिहुयणि गरुया वि भव-सायरि ण पडंति।।४।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- फिर मैं उन सिद्धों को वन्दता हूँ, जो मोक्ष में तिष्ठ रहे हैं।** मोक्ष में रहे हैं। आहाहा! **कैसे हैं, वे ज्ञान से तीन लोक में गुरु हैं,...** ज्ञान से तीन लोक के गुरु हैं। आहाहा! **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।** अर्थात् क्या कहते हैं? गुरु हैं, तथापि नीचे नहीं पड़ते। भरी चीज़ तो नीचे गिरती है। आहाहा! तीन लोक के बड़े गुरु हैं। ओहो! **तो भी संसार-समुद्र में नहीं पड़ते हैं।**

भावार्थ :- जो भारी होता है, वह गुरुतर होता है,... लोहा वजनदार (होता है)। **और जल में डूब जाता है,...** भारी चीज़ जल में डूब जाती है। **वे भगवान त्रैलोक्य में गुरु हैं,...** आहाहा! तीन लोक में उनके जैसा कोई बड़ा गुरु नहीं। सिद्ध समान बड़ी कोई चीज़ नहीं। आहाहा! **परन्तु भव-सागर में नहीं पड़ते हैं।** आहाहा! तीन लोक में बड़े हैं, महन्त हैं। आहाहा! महात्मा, महा-आत्मा हो गये वे तो। तो भी भवसागर में नहीं पड़ती। कैसी शैली ली, देखा! उसमें लिया है न कहीं? नहीं? ऐसा कि सिद्ध की संख्या थोड़ी है तो भी सिद्ध की संख्या संसारी को खींचती है, सिद्ध होने के लिये। आता है न? आता है। सिद्ध थोड़े होने पर भी ऊँचे और बड़े हैं। वे संसारीजीव को खींचते हैं। संसारी जीव उन्हें नहीं खींच सकता। ऐसा आता है। 'अष्टपाहुड़' में आता है प्रायः। अष्टपाहुड़ है न? उसमें है। आहाहा! अष्टपाहुड़ में कहीं है। आहाहा! अनन्त सिद्ध ऊँचे रहे होने पर भी लोक के अग्र में, वे खींचकर संसारी अनन्त हैं, वे खिंचकर यहाँ नहीं आते। परन्तु सिद्ध की ऐसी शक्ति है कि उनका लक्ष्य करता है, वह संसारी खिंचकर सिद्ध होता है। आहाहा! ऐसा करके यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है कि सिद्ध हैं, वे संसार में नहीं आते। ऐसा। यह लोग कहते हैं न, सब मोक्ष जाते हैं... कल आया था न? चिन्ता हो, इसलिए डालो इन्हें नीचे वापस। भान बिना के। आहाहा!

उन सिद्धों को मैं वन्दता हूँ,... कैसे? परमात्मपद महामहत्ता प्राप्त होने पर भी नीचे नहीं आते। ऐसे सिद्धों को मैं वन्दन करता हूँ। आहाहा! **जो तीर्थंकर परमदेव तथा**

भरत,... चक्रवर्ती। **सगर...** चक्रवर्ती। **राघव,...** राघव अर्थात् राम। **पाण्डवादिक पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प...** आहाहा! पाँचों पाण्डव। **पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से निजशुद्धात्मस्वरूप पाके,...** तीन मोक्ष में पधारे हैं, वे तो (दो) सर्वार्थसिद्धि में गये हैं। आहाहा! ये पाँच पाण्डव... जरा विकल्प आ गया, कैसे होगा? कहो, मात्र साधर्मी है। जिन्हें लोहे के (गर्म गहने) पहनाये। आहाहा! कहो, ऐसा चौथे काल में ऐसे मुनियों को लोहे के धगधगते गहने पहनाये। तीन तो ध्यान में रहकर मोक्ष पधारे। दो को जरा विकल्प रहा। विकल्प तो शुभ आया था। कैसे होगा? ३३ सागर का आयुष्य बँध गया। केवलज्ञान दूर हो गया। आहाहा! एक शुभविकल्प (कि) साधर्मी को कैसे है, ऐसे विकल्प में ३३ सागर बढ़ गये। और फिर भी अभी एक दूसरा भव मनुष्य का करेंगे। आहाहा! शुभभाव संसार में दाखिल करने की चीज़ है। आता है न? पुण्य-पाप (अधिकार) में। यह मुनि शुभभाव से संसार में दाखिल हुए। दो भव हुए। अब उस शुभभाव से आत्मा को धर्म हो, लाभ हो, (यह तो) बहुत दृष्टि की विपरीतता।

यहाँ कहते हैं तीर्थंकरदेव **परमदेव, तथा भरत (चक्रवर्ती), सगर (चक्रवर्ती), राघव,...** अर्थात् राम। रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे हैं। **पाण्डवादिक पूर्व काल में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** लो! इस बल से मोक्ष पधारे हैं, ऐसा कहते हैं। वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन आत्मा के वेदन के ज्ञानबल से **निज शुद्धात्मस्वरूप पाके,...** आहाहा! निज अर्थात् अपना शुद्धात्मस्वरूप पर्याय में पाकर **कर्मों का क्षयकर,...** आहाहा! **परमसमाधानरूप...** यह निर्वाण की व्याख्या करते हैं। चौथा है न? चौथा है। **'निर्वाणे तिष्ठन्ति' 'समाहितस्व'...** हाँ आया। **'समाहितस्वस्वरूपभूते निर्वाणपदे तिष्ठन्ति'** लिखा है। **'समाहितस्वस्वरूपभूते** आहाहा! समान समाधान, ...समाधान। आहाहा! ऐसे **ऐसे निर्वाणपद में विराज रहे हैं, उनको मेरा नमस्कार हो...** यह चार गाथा हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)